विज्ञान क्या है?

रिचर्ड पी. फाइनमेन

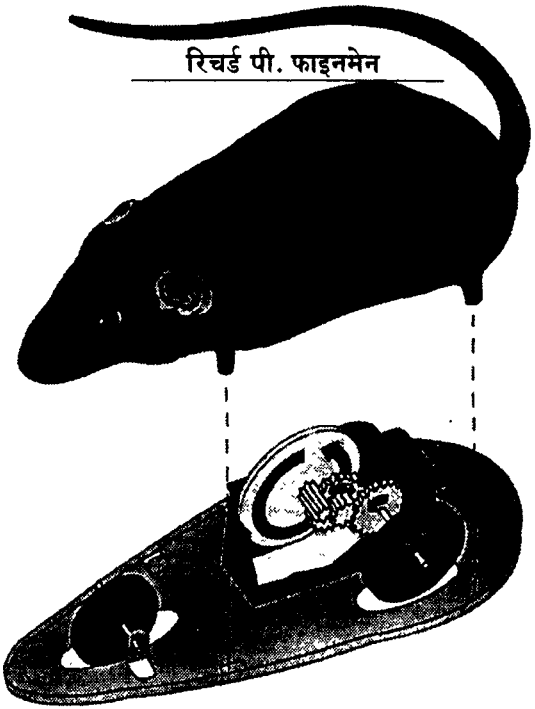

''हर उस बात पर संदेह करना जो बात अतीत से बह कर हम तक पहुंची है – एक अनुभूत 'सत्य' का जामा पहने, और फिर ठेठ शुरुआत से अपने ही अनुभव के बूते उस 'सत्य' को परखना। बजाए इसके कि पहले के अनुभव पर ज्यों-का-त्यों विश्वास कर लिया जाए। और यही विज्ञान है।''
पढ़िए फाइनमेन विज्ञान के बारे में क्या सोचते हैं।

शुक्रिया श्रीमान डी'रोज़ कि मुझे आप सब विज्ञान शिक्षकों से मिलने का मौका दिया। मैं भी विज्ञान पढ़ाता हूं। मुझे केवल स्नातक छात्रों को भौतिक विज्ञान पढ़ाने का ही अनुभव है, और इसी आधार पर जानता हूं कि मैं नहीं जानता कि पढ़ाया कैसे जाना चाहिए?

और मुझे यकीन है कि आप सब महानुभाव – शिक्षक बिरादरी की सबसे निचली पायदान पर काम कर रहे असल शिक्षक, शिक्षकों के शिक्षक, पाठ्यक्रम विशेषज्ञ – भी अच्छे से जानते हैं कि आप भी इससे उतने ही अनभिज्ञ हैं। वर्ना आप इस सम्मेलन में आते ही क्यों?

'विज्ञान क्या है?' यह विषय मैंने नहीं चुना है। यह तो डी'रोज़ साहब का विषय था। लेकिन मैं कहना चाहूंगा कि 'विज्ञान क्या है?' किसी भी तरह से 'विज्ञान कैसे पढ़ाया जाए?' का समानार्थी नहीं बनता। और दो कारणों से मैं आपका ध्यान इस पर खींचना चाहूंगा। अव्वल तो इस व्याख्यान की मेरी तैयारी के तरीके से ऐसा लग सकता है गोया मैं आपको बताने की कोशिश कर रहा हूं कि विज्ञान पढ़ाया कैसे जाए। नहीं-नहीं, बिल्कुल नहीं। क्योंकि मैं छोटे बच्चों के बारे में कुछ नहीं जानता। मैं भी एक बच्चे का पिता हूं – और इसलिए दावे के साथ कह सकता हूं कि मैं नहीं जानता। और दूसरी वजह है कि मुझे लगता है आप में से अधिकांश को आत्मविश्वास की कुछ कमी का सा एहसास है (नहीं तो इतनी बातें, इतने पर्चे, इतने विशेषज्ञ फिर भला क्यों!)। किसी -न-किसी तरह आप लोगों को हमेशा भाषण पिलाए जाते रहे हैं कि कैसे चीज़ें बहुत अच्छे-से नहीं हो रही हैं और आप लोगों को पढ़ाने के बेहतर तरीके सीखने चाहिए। मैं आपको डांटने-फटकारने वाला नहीं, और न ही आपके द्वारा अपनाई जा रही विधियों में शर्तिया सुधार के तरीके सुझाने वाला हूं। नहीं भई, सच्चाई तो यह है कि 'केलटेक' में हमारे पास बहुत बढ़िया बच्चे आ रहे हैं। समय के साथ-साथ हमने उन्हें बेहतर, और बेहतर भी होते पाया है। यह कैसे हुआ, पता नहीं। शायद आप भी नहीं जानते हैं। मैं व्यवस्था में दखलअंदाज़ी नहीं करना चाहता, वह बहुत अच्छी है।

विज्ञान क्या है? अगर आप इसे पढ़ाते हैं तो आप लोगों को यह पता होना ही चाहिए। यह तो सामान्य ज्ञान है। मैं भला क्या कह सकता हूं?

अगर आप नहीं जानते, तो बता दूं कि हरेक पाठ्यपुस्तक का शिक्षक-संस्करण इस विषय पर विस्तृत चर्चा करता है। परन्तु विज्ञान वह नहीं जिसे दार्शनिकों ने विज्ञान कह दिया और वह तो कतई नहीं जो शिक्षक-संस्करण कहते हैं। दरअसल, मेरे आज के व्याख्यान का विषय यही सवाल है कि विज्ञान आखिर है क्या बला!

इस व्याख्यान के लिए मंजूरी देने के कुछ समय बाद ही इस सवाल के बारे में सोचते हुए मेरे मन में एक नन्हीं कविता कुलबुला उठी –

एक कनखजूरा था बड़ा प्रसन्न
जब तक न पूछा एक मेंढक ने यह प्रश्न
कौन-सी टांग आती है तुम्हारी किस टांग के बाद
और पहुंचे उसके संदेह इस ऊंचाई तक
कि वह बेकल सा जा गिरा एक खड्ड के भीतर
नहीं जानता कैसे जाता भाग

प्रेस रिपोटर्रों की ओर से ढेरों प्रयास हुए कि इस व्याख्यान की एक-ठो 'झलक' मिल जाए। परन्तु वो तो संभव ही नहीं था क्योंकि अभी कुछ समय पहले ही तो मैंने इसे तैयार किया है।

विषय की जटिलता और दार्शनिक व्याख्या के प्रति मेरी अरुचि को देखते हुए मैं एक अनूठा तरीका अपना रहा हूं। मैं आपको बस इतना ही बताऊंगा कि मैंने कैसे जाना कि विज्ञान क्या है। कुछ-कुछ बचकाना सा है यह तरीका। मैंने उसे बचपन में सीखा। वह शुरू से ही मेरे खून में था। मैं बताऊंगा कि यह सब मेरे भीतर कैसे घर कर गया। गोया, मैं आपको बताने जा रहा होऊं कि पढ़ाया कैसे जाए। नहीं, यह मेरी मंशा नहीं। विज्ञान क्या है, यह मैं आपको अपने अनुभव से बताऊंगा कि मैंने कैसे सीखा कि विज्ञान क्या है।

●●●

यह मेरे पिता की करनी है। मैं जब मां के पेट में था, मेरे पिता ने कहा, अगर लड़का हुआ तो वह वैज्ञानिक बनेगा।* जाने वे ऐसा कैसे कह पाए? उन्होंने मुझे कभी न कहा कि मैं वैज्ञानिक बनूं। वह खुद भी

फाइनमेन की छोटी बहन जोआन ने भी भौतिक शास्त्र में पीएच.डी. की है; जबकि उनके पिता की शायद यह धारणा थी कि केवल लड़के ही वैज्ञानिक बन सकते हैं।

वैज्ञानिक न थे। वे एक कम्पनी के सेल्स प्रबंधक थे। लेकिन वे विज्ञान पढ़ते थे और उसे पसंद करते थे।

जब मैं बहुत छोटा था, मेरे पिता रात के खाने के बाद मेरे साथ एक खेल खेलते थे। वे कहीं से बहुत सारी पुरानी आयताकार टाइल ले आए थे। हम उन्हें एक सिरे पर, एक के पास एक जमा देते। इसके बाद एक सिरे को धकाते तो सब-की-सब झटके-से लुढ़क जातीं। मुझे खूब मज़ा आता।

इसके बाद खेल कुछ और सुधरा। टाइल अलग-अलग रंगों की थीं। मेरा काम था एक सफेद, दो नीली, एक सफेद, दो नीली..... के क्रम में उन्हें जमाना। मन भले ही नीली टाइल रखने को करता पर उसे सफेद ही होना पड़ता। आप उसमें छिपी तरकीब को पहचान चुके होंगे, पहले खेल के मज़े लेने देना, फिर धीरे से शैक्षिक महत्व के पहलू उसमें जोड़ देना!

खैर, मेरी मां जो कहीं ज़्यादा संवेदनशील महिला हैं, मेरे पिता के इस घुसपैठिया अंदाज़ को ताड़ गईं और बोलीं, "अगर वो बेचारा नीली

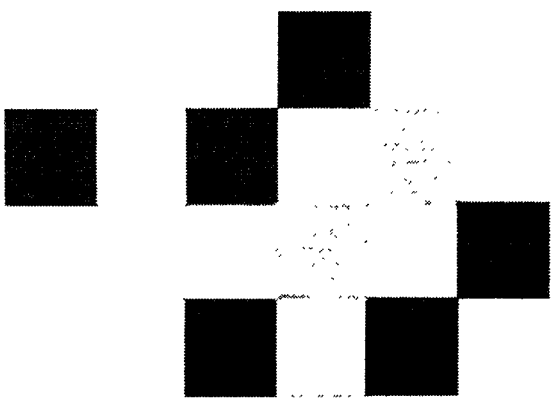

टाइल रखना चाहता है तो उसे रखने दो न।" पिता बोले, "नहीं, मै चाहता हूं कि उसका ध्यान पैटर्न की ओर जाए। इस शुरुआती स्तर पर मैं यही एकमात्र चीज़ कर सकता हूं जो गणित से जुड़ी है।" अगरचे मेरा आख्यान 'गणित क्या है?' रहा होता तो अब तक जवाब दिया जा चुका होता। गणित का मतलब ही है तरतीब यानी पैटर्न ढूंढना।

मैं इस बात का एक प्रमाण और देना चाहूंगा कि गणित केवल पैटर्न ही पैटर्न है। जिन दिनों कॉर्नेल में पढ़ रहा था उन दिनों मैं छात्रों के साथ केंटीन में बैठता, कुछ खाता, लेकिन कान औरों की बातचीत सुनने में लगे रहते – उस तमाम शोर-शराबे में कोई एक भी समझदारी भरा शब्द पाने की कोशिश में। आप लोग मेरे अचरज का अंदाज़ा लगा सकते हैं जब मैंने औरों की बातचीत सुनते हुए अपने हिसाब से एक ज़बरदस्त चीज़ खोज निकाली।

मैंने दो लड़कियों के बीच हो रही बातचीत सुनी। एक दूसरी को बता रही थी कि अगर तुम्हें सीधी रेखा खींचनी है तो जितनी दूरी ऊपर की ओर बढ़ो उतनी ही दूरी दाहिनी ओर भी – बस सीधी रेखा खिंच जाएगी। विश्लेषक रेखागणित का एक गहरा सिद्धांत है यह। बातचीत चलती रही और मैं था अवाक!

वह जारी रही, "अब मान लो दूसरी ओर से एक रेखा और चली आ रही है और आप देखना चाहते हैं कि कहां आकर वे दोनों एक-दूसरे को काटेंगी?" ऐसे में अगर एक रेखा ऊर्ध्वाधर दिशा में अपने प्रत्येक एक कदम के मुकाबले दाहिनी दिशा में दो कदम बढ़ती है, और दूसरी वाली लाईन ऊर्ध्वाधर दिशा में अपने प्रत्येक एक कदम के बरक्स दाहिनी दिशा में तीन कदम आगे बढ़ती है, और वे दोनों एक-दूसरे से कोई 20 कदम की दूरी पर आगे को बढ़ना शुरू करती हैं..... वगैरह.....वगैरह। और मैं भौंचक्का! अंततः वे जान ही गईं कि दोनों रेखाओं का प्रतिच्छेद बिंदु कहां आएगा। दरअसल, पहली वाली दूसरी को मौजे बुनना सिखा रही थी।

मेरे पिता ने मुझे एक चीज़ और बताई – चूंकि मसला बात से ज़्यादा जज़्बात से जुड़ा है चुनांचे मेरा किस्सा इतना मुकम्मिल न बने शायद। बहरहाल पिताजी ने यह बताया कि हर वृत्त की, चाहे वह किसी भी आकार का क्यों न हो, परिधि व उसके व्यास का अनुपात हमेशा समान

रहता है। हालांकि बात मुझे बहुत ज्यादा अस्पष्ट न लगी। लेकिन इस अनुपात की कुछ अद्भुत विशिष्टता थी। वह एक अनूठी संख्या थी, पाई (π)। अजीब तिलिस्मी नम्बर था यह, जिसे मैं अपने लड़कपन में भेद न पाया, परन्तु हर तरफ मैं π ही π ढूंढता....।

यह विचार कि इस संख्या में एक रहस्य, एक रोमांच है, यही मेरे लिए अहम था। बहुत बाद में, प्रयोगशाला में प्रयोग करते वक्त (मेरे अपने घर की प्रयोगशाला में), दरअसल उठापटक करते वक्त – हां, मैंने कभी प्रयोग नहीं किए, बस इधर-उधर हाथ-पैर पटके, कुछेक उपकरण बनाए। धीमे-धीमे किताबों और मेन्युअल्स के ज़रिए मैंने जाना कि विद्युत पर लागू होने वाले कुछ सूत्र हैं जो करंट व प्रतिरोध इत्यादि का परस्पर संबंध दर्शाते हैं। एक दिन ऐसे ही, किसी किताब में सूत्र ढूंढते वक्त मैंने एक सूत्र खोजा – एक अनुनादी परिपथ की आवृत्ति का सूत्र ($2\pi \sqrt{LC}$), जहां L परिपथ का प्रेरण और C उसकी विद्युतधारिता यानी केपेसिटेन्स। और इस सूत्र में मौजूद था π, पर वृत्त नदारद! आप जनाब हंस रहे हैं पर मैं उस वक्त बहुत गंभीर था। मेरी समझ के अनुसार π तो वृत्त से जुड़ी एक चीज़ रही, और आलम यह कि यहां π एक इलेक्ट्रिक सर्किट के सूत्र में मौजूद दिख रहा था। आप जो हंस रहे हैं, जानते हैं कि बिना वृत इस सूत्र में π कहां से टपक पड़ा?

मुझे तो खोजना होगा उसे। सोचना होगा उसके बारे में। और उस सबके बाद मुझे अचानक समझ में आया कि विद्युत परिपथ में कुंडलियां वृत्ताकार होती हैं। ज़रूर इनकी वजह से π मौजूद है इस सूत्र में। कोई छह माह बाद मुझे एक और किताब मिली जिसमें मुझे वृत्ताकार और आयताकार कुंडलियों के प्रेरण संबंधी सूत्र मिले। इन दोनों सूत्रों में π मौजूद था। सोच और खोज का सफर फिर शुरू हुआ और तब मैंने जाना कि इन सूत्रों में 'पाई' वृत्ताकार कुंडलियों की वजह से नहीं उपजी थी। आज मैं इसे बेहतर ढंग से समझ सकता हूं, लेकिन अंदर... कहीं अपने भीतर.... मैं आज तक नहीं जान पाया कि वो वृत कहां है, और वो 'पाई' कहां से आई....।

क्या मैं अपनी इस कहानी के बीच कोई उपकथा ला सकता हूं? शब्दों और परिभाषाओं पर मैं कुछ कहना चाहूंगा। मेरे ख्याल से शब्द सीखना

ज़रूरी है, परन्तु वो विज्ञान नहीं है। क्योंकि वो विज्ञान नहीं है, इसका मतलब यह नहीं कि शब्द सिखाए ही न जाएं। हम इस बारे में बात नहीं कर रहे कि क्या सिखाया जाए, हम चर्चा कर रहे हैं कि विज्ञान क्या है? सेंटीग्रेड को फेरनहाईट में कैसे बदलें, यह जानना विज्ञान नहीं है। यह ज़रूरी तो है लेकिन यह विज्ञान नहीं। वैसे ही जैसे कला पर चर्चा करते वक्त आप यह नहीं कहेंगे कि कला से आशय इस तथ्य के ज्ञान से है कि 3-बी पेंसिल, 2-एच पेंसिल के मुकाबले सॉफ्ट होती है। इसका मतलब यह नहीं है कि एक कला-शिक्षक को यह भेद नहीं सिखाना चाहिए या फिर एक कलाकार को कोई फर्क न पड़ेगा अगर उसे इस बाबत कोई जानकारी नहीं। (दरअसल प्रयोग के द्वारा इस फर्क को क्षण-भर में जाना जा सकता है, लेकिन यह रहा एक वैज्ञानिक तरीका जिसका ख्याल कला शिक्षकों के ज़ेहन में न आए शायद)।

एक-दूसरे से बात करने के लिए हमें शब्दों का सहारा लेना ही पड़ता है, और इसमें कुछ गलत भी नहीं। लेकिन फर्क कर पाना बहुत ज़रूरी है। बहुत ज़रूरी है यह भेद जान पाना कि कब हम विज्ञान के लिए ज़रूरी साधन जैसे कि इसकी शब्दावली वगैरह पढ़ा रहे होते हैं और कब हम ठेठ विज्ञान ही सिखा रहे होते हैं। चलिए, विज्ञान की एक पुस्तक की नकारात्मक आलोचना के ज़रिए मैं अपनी बात कुछ और स्पष्ट करने का प्रयास करता हूं।

यह एक पहली श्रेणी की किताब है। इसके पहले अध्याय की शुरुआत ही विज्ञान पढ़ाने के एक खेदजनक तरीके से होती है। खेदजनक इसलिए कि विज्ञान क्या है संबंधी एक गलत धारणा से यह पुस्तक शुरू होती है। इसके पहले अध्याय में एक कुत्ते का चित्र है। पहले एक चाबी वाले खिलौना कुत्ते का चित्र – फिर चाबी भरते एक हाथ का चित्र – और फिर चलते हुए कुत्ते का चित्र और एक प्रश्न, "कौन-सी चीज़ इसके चलने का कारण है?" इसके बाद एक असली कुत्ते का चित्र और एक प्रश्न, "कौन-सी चीज़ इसके चलने का कारण है?" इसके बाद एक मोटर साइकिल और वही सवाल, "कौन-सी चीज़ इसके चलने का कारण है?" आदि-आदि।

पहले मुझे लगा कि वे विज्ञान के विभिन्न दायरों यानी भौतिकी, जीव विज्ञान, रसायन शास्त्र के बारे में बताने की भूमिका बना रहे हैं। लेकिन

वैसा नहीं था। किताब के शिक्षक संस्करण में इसका उत्तर था, "इन सबके चलने का कारण ऊर्जा है।"

अब ऊर्जा जो है गोया इतनी आसान भी नहीं, बड़ी विकट अवधारणा है। इसे सही तौर पर समझ पांना बेहद मुश्किल है। मेरा मतलब यह है कि ऊर्जा को इतनी अच्छी तरह समझ पाना आसान नहीं कि उसका सही प्रयोग किया जा सके और इस विचार का इस्तेमाल करते हुए आप अन्य निष्कर्ष निकाल पाएं। यह पहली कक्षा से तो परे की बात है ही। इसके बदले आप यह जवाब भी दे सकते हैं कि "भगवान इसे चलाते हैं", या कि "आत्मा इसे चलाती है", या फिर "गतिशीलता इसे गति देती है।" (दरअसल कहा यह भी जा सकता है कि "ऊर्जा इसके रुकने में सहायक होती है।")

चलिए, इसे ऐसे देखते हैं – यह ऊर्जा की परिभाषा भर है। उसे पलटा जाना चाहिए। जब कोई चीज़ गति कर सकती है, तब हम कह सकते हैं कि उसमें ऊर्जा है। लेकिन यह नहीं कि "ऊर्जा उसके चलने का कारण है।"

इन दोनों में अत्यंत ही सूक्ष्म भेद है। जड़त्व की समस्या के साथ भी कुछ ऐसा ही है। शायद मैं इस फर्क को इस प्रकार थोड़ा-सा और स्पष्ट कर पाऊं।

आप किसी बच्चे से पूछें कि "कौन-सी चीज़ उस खिलौने के चलने का कारण है?" और फिर एक आम आदमी से वही बात पूछें ..... जवाब होगा, आप चाबी भरेंगे तो स्प्रिंग कसेगा, और फिर यह स्प्रिंग खुद को खोलने के चक्कर में गियर को गोल-गोल घुमाएगा। विज्ञान शुरू करने का नायाब तरीका हो सकता है यह। बस खिलौना खोलें और देखें कि वह काम कैसे करता है। गियर की पटुता परखें, दांतेदार चक्र देखें, खिलौने को उसके बनने के तरीके से समझें। दांतेदार चक्र और दूसरी चीज़ें सोचने-बनाने वाले लोगों के कौशल के कायल बनें। दरअसल, सवाल में कोई खामी नहीं, जवाब ही गड़बड़ है। गलती यह है कि उनकी कोशिश ऊर्जा की परिभाषा सिखाने की रही, जो इससे नहीं सीखा जा सकता।

मान लो कोई विद्यार्थी कह उठे, "मैं नहीं समझता कि यह खिलौना ऊर्जा से चलता है।" अब बताएं कहां गई तमाम बहस? हो गई पंक्चर!

आखिरकार मैंने एक तरीका पा ही लिया; यह जांचने का कि आपने एक अवधारणा सिखाई है या कि महज एक परिभाषा भर। तरीका यूं है, "हाल ही में सीखे नए शब्दों का इस्तेमाल किए बगैर आप उस बात को अपने तरीके से, अपनी भाषा में कहने का प्रयास करें जो आपने अभी-अभी सीखी है।" "ऊर्जा शब्द के इस्तेमाल के बिना ही बताएं कि अब आप कुत्ते की गति के बारे में क्या जानते हैं।" आप नहीं बता पाएंगे। कुल जमा बात यह है कि आपने परिभाषा के सिवा न कुछ सीखा, न जाना। आपने विज्ञान के बारे में कुछ न सीखा। यह शायद गलत भी न हो। हो सकता है कि आप इस वक्त विज्ञान के बारे में कुछ सीखना ही नहीं चाहते । ऐसे में आप को परिभाषाएं रटनी पड़ती हैं। अब आप ही बताएं, क्या पहले ही अध्याय के लिहाज़ से यह सब अनर्थकारी नहीं?

मेरे ख्याल से, पहले ही अध्याय में किसी सवाल का जवाब देने के लिए एक गूढ़, रहस्यमय सूत्र का सहारा लेना एक खराब शुरुआत है। किताब में और भी चीज़ें हैं – "गुरुत्वाकर्षण के कारण चीज़ें गिरती हैं," "आपका जूते का तला घर्षण के कारण घिसता है।" जूते का चमड़ा दुर्बल हुआ जाता है, क्योंकि चलने के दौरान वह सड़क के साथ घिसता रहता है और सड़क की उबड़-खाबड़ सतह के साथ गुत्थमगुत्था हो टुकड़े-टुकड़े होता रहता है। इसे सिर्फ 'घर्षण' का नाम दे इतिश्री करना दुःखद होगा – क्योंकि यह विज्ञान नहीं है।

●●●

मेरे पिता ने भी ऊर्जा के बारे में चर्चा की, लेकिन इस शब्द का इस्तेमाल उन्होंने तभी किया जब मुझे यह थोड़ा-बहुत स्पष्ट होने लगा। इस मामले में वे क्या करते, मुझे मालूम है। दरअसल, उन्होंने भी मूलतः वही चीज़ें की, लेकिन उसी खिलौने की मिसाल देकर नहीं। अपने ही लिहाज़ में वे बोलते, "वह चलता है क्योंकि सूरज चमकता है।" मैं कहता, "अरे, सूरज चमकने, न चमकने से इसका क्या लेना-देना? यह हिला, क्योंकि मैंने चाबी भरी थी।"

"अरे यार, तुम भला चाबी भरने के लिए कैसे हिलडुल पाए?"

"क्योंकि मैं खाना खाता हूं।"

"क्या खाते हो तुम?"

"सब्ज़ियां और पत्ते।"

"और ये सब कैसे पैदा होते हैं?"

"वे बढ़ते हैं क्योंकि सूर्य चमकता है, और कैसे!"

कुत्ते के मामले में भी ऐसा ही कुछ है। कैरोसीन या पेट्रोल क्या है? सूरज की ऊर्जा जिसे पौधों ने जमा करके ज़मीन के अंदर संरक्षित रखा है। अन्य सभी उदाहरण भी सूरज पर ही आकर खत्म होते हैं। तो इस तरह, जिस विचार की तरफ हमारी पाठ्यपुस्तक लेकर जाना चाहती है, उसे एक दिलचस्प अंदाज़ में व्यक्त किया जा सका है। हर वो चीज़ जो चलती-फिरती है उसके ऐसा कर पाने का कारण हम सूरज की रोशनी में देख पाते हैं। यह बात ऊर्जा के दो अलग-अलग स्रोतों के आपसी नाते की व्याख्या करती है। बच्चे इससे असहमत हो सकते हैं और आप उनसे चर्चा कर सकते हैं। तो इसमें एक अंतर है। (बाद में, मैं ज्वार-भाटे और पृथ्वी के घूमने के कारणों जैसे रहस्य भरे सवालों को लेकर पिताजी से फिर उलझ पाया)।

यह परिभाषाओं (जो ज़रूरी भी हैं) और विज्ञान के बीच के अंतर का केवल एक उदाहरण है। खासतौर पर इस मामले में, ऐतराज सिर्फ यह है कि यह सब पहले अध्याय में किया जा रहा था। बेशक यह सब आना चाहिए, लेकिन कुछ बाद में, ऊर्जा के बारे में बात करते समय, और वह भी कुत्ते की गतिशीलता से जुड़े ऐसे उदाहरण से नहीं। बच्चे को, बच्चे जैसा ही जवाब मिलना चाहिए, "चलो इसे खोलते हैं, और देखते हैं।"

●●●

जंगल में पिताजी के साथ घूमते हुए मैंने बहुत कुछ जाना। मसलन पक्षियों के मामले में – उस चिड़िया का नाम न ले, उसकी जगह पिताजी कहते, "उस चिड़िया पर ध्यान दो। वह बार-बार अपने परों में चोंच डाल रही है। वो अपने पंखों को बहुत ज़्यादा कुरेदती है। तुम्हें क्या लगता है कि वह ऐसा क्यों करती है?"

मैंने अंदाज़ लगाया, शायद इसलिए कि उसके पंख कुछ इखरे-बिखरे से

हैं और वह उनको सीधा करने के जुगाड़ में है। "लेकिन पंख कब और क्यों अस्त-व्यस्त हो जाते हैं?" पिता पूछते।

"जब वह उड़ती है। चलने से कोई दिक्कत नहीं, लेकिन उड़ते वक्त पंख अस्त-व्यस्त हो जाते हैं।"

वे कहते, "तो तुम्हारा कहना है कि ज़मीन पर उतरने के तुरन्त बाद इस चिड़िया को अपने पंखों में चोंच ज़्यादा मारनी पड़ती है, लेकिन ज़मीन पर उतरने और अपने पंखों को तह करके इधर-उधर तफरीह ले लेने के बाद उसे इसकी ज़रूरत कम पड़ती है। ठीक है, चलो, खुद ही चल के देख लेते हैं।" हमने देखा, ध्यान से देखा और मैंने पाया कि चाहे कितनी ही देर से वो ज़मीन पर घूम रही हो, उसका अपने पंखों को चोंच मारना कम नहीं होता।

मेरा अनुमान गलत निकला और मैं सही वजह नहीं खोज पा रहा था। पिताजी ने कारण बताया कि उन चिड़ियों में जूंएं होती हैं। फिर मेरे पिता ने पूरी-की-पूरी एक खाद्य शृंखला की दिलचस्प दास्तान सुनाई कि चिड़िया के पंखों से एक पपड़ी-सी निकलती है, जिन्हें जूंएं खाती हैं। तिस पर इन जूंओं की टांगों के बीच के जोड़ों में से मोमनुमा पदार्थ निकलता है जो वहां बसे एक प्रकार के कीट का भोजन बनता है। लेकिन इस कीट की नियति देखो कि वो इसे पूरी तरह हजम नहीं कर पाता। नतीजतन उसके पिछले भाग से एक द्रव निकलता है जिसमें लबालब शक्कर-ही-शक्कर होती है जिसमें एक सूक्ष्म प्राणी पलता है, इत्यादि इत्यादि।

तथ्य भले ही सही न हों पर जज़्बा सही है। पहले मैंने परजीविता को जाना – एक पर दूजा, दूसरे पर तीसरा, तीसरे पर ..... फिर किसी और पर एक और .....।

एक और बात उन्होंने बताई कि दुनिया में जब-जब भोजन का कोई स्रोत होगा जिस पर ज़िंदा रहा जा सकता है, तब-तब जीवन अपने किसी-न-किसी रूप में उपस्थित हो उस स्रोत का उपभोग करेगा, और हर बच रहा निवाला किसी-न-किसी का ग्रास तो बनता ही है।

मेरा आशय यह है कि अवलोकन का परिणाम अद्‌भुत, विलक्षण रहा। भले ही मैं अंतिम निष्कर्ष तक न पहुंच पाया, पर जो पाया वह उत्कृष्ट

था। मान लो मुझे अवलोकन करने के लिए, सूची बनाने के लिए, लिखने, देखने के लिए कहा जाता और जब मैं अपनी सूची बनाता तो अपनी नोट बुक के पीछे 130 दूसरी सूचियों को नत्थी पाता। मुझे लगता गोया अवलोकन का निष्कर्ष तुलनात्मक रूप से नीरस ही होता है, और इससे कोई बात बनती तो नहीं दिखती।

मेरे हिसाब से लोगों को अवलोकन करना सिखाते वक्त आप उन्हें यह अहसास ज़रूर कराएं कि इस तमाम प्रक्रिया से कुछ उम्दा तो ज़रूर हासिल होगा। मैंने तो तभी जाना कि विज्ञान जिस चीज़ का नाम है – वह चीज़ है धीरज। अगर आपने देखा, आपने भाला, और उस पर ध्यान भी धरा तो यकीनन आपको इसका प्रतिफल मिलेगा (ज़रूरी नहीं कि हर दफा मिले)। नतीजा यह कि और परिपक्व होने के बाद मैं श्रम साध्य तरीके से घंटों-घंटों, सालों-सालों नाना प्रकार की समस्याओं में भिड़ा रहता – और कई बार सालों तक कोई नतीजा न निकलता। ढेरों पर्चे कचरे की टोकरी की भेंट चढ़ जाते, लेकिन बीच-बीच में, कभी कोई नई समझ अचानक कौंध आती और मैं समृद्ध महसूस करता। मैंने यह कभी नहीं पाया कि अवलोकन बेकार-बेकाम की चीज़ है।

जंगल में हमने कई अन्य चीज़ें भी जानीं। हम घूमने निकलते और उन तमाम चीज़ों पर गौर फर्माते जो नियत व प्रकृत ढंग से होती रहतीं – पल-पल बढ़ते पौधे, अपने हिस्से की रोशनी पाने को मचलते पेड़ और ऊंचे-से-ऊंचा होने की कोशिशें, तिस पर 35-40 फीट से ज़्यादा की ऊंचाई पर पानी पहुंचने की समस्या, ज़मीन पर उग आए नन्हें-नन्हें पौधे जो यहां-वहां से, तमाम कायनात से झिर-झिर आती रोशनी की फिराक में रहते.....।

यह सब देख चुकने के बाद, एक दिन मेरे पिता मुझे फिर से जंगल ले गए और बोले, "पिछले कुछ समय से, जब से हम जंगल देख रहे हैं, हमने अभी यहां हो रही आधी चीज़ें ही देखी हैं, एकदम आधी।"

मैं बोला, "क्या कह रहे हैं आप?"

वे बोले, "अभी तक हमने इन चीज़ों का बढ़ना ही देखा है लेकिन हर बढ़ने के साथ-साथ उतनी ही मात्रा में घटना भी होता है। अन्यथा यह सारा पदार्थ हमेशा के लिए खत्म हो चुका होता। मृत पेड़ ज़मीन पर ही पड़े रहते और हवा व मिट्टी के सारे तत्वों को जीम चुके होते। फिर वहां कुछ न उग पाता क्योंकि उगने के लिए ज़रूरी तत्व बचते ही नहीं। इसलिए हर वृद्धि के साथ उतनी ही मात्रा का क्षय होना ज़रूरी है।"

इसके बाद हमने जंगल की कई बार सैर की। हम वहां बूढ़े ठूंठों को तोड़-तोड़ कर देखते, अजीबो-गरीब कीड़े और पनपती फफूंद देखते। हालांकि वे मुझे बैक्टीरिया तो न दिखा पाए पर फिर भी मैं जंगल को हर पल बदलते पदार्थों की एक सतत प्रक्रिया के बतौर तो देख ही सका।

हमारे बीच अनन्त बातें होती – जहां चीज़ों के विस्तार में जाने का एक निराला तरीका होता। वे अक्सर बात कुछ इस तरह शुरू करते, "मंगल ग्रह से पधारे किसी वासी की नज़रों से हमारा यह संसार देखो।" एक बार जब मैं अपनी बिजली से चलने वाली रेलगाड़ी से खेल रहा था, तो उन्होंने कहा कि एक बड़ा-सा चका है जो पानी की वजह से घूम रहा है, ये चका ताम्बे के तंतुओं से जुड़ा हुआ है और ये तंतु हर दिशा में दूर-दूर तक फैले हैं, और फिर कई सारे छोटे चके भी हैं, जो बड़े चके के घूमने पर घूमते हैं। उनके बीच केवल तांबा और लोहा ही है, इसके अलावा और कुछ भी नहीं, बीच में कोई घूमने वाला हिस्सा नहीं। आप यहां एक चका घुमाइए और बस सारे-के-सारे छोटे चके, बड़के के साथ-साथ चल पड़े। तुम्हारी रेलगाड़ी भी उनमें से एक है! मेरे पिता का संसार एकदम अद्‌भुत था.....।

●●●

विज्ञान की दास्तां भी, मेरे ख्याल से, कुछ-कुछ ऐसी ही अजीब है। इस ग्रह पर जीवन का उद्‌भव हुआ और जैविक विकास के ज़रिए ऐसे पड़ाव तक आ पहुंचा, जहां ऐसे जीव थे, जो बुद्धिमान थे। मेरा आशय

महज इंसानों तक ही सीमित नहीं है। मैं उन जानवरों की भी बात कर रहा हूं, जो खेलते हैं और अपने अनुभव से सीखते हैं। लेकिन इस स्तर पर हर प्राणी को अपने खुद के अनुभव से ही सीखना पड़ेगा।

इन जीवों में धीरे-धीरे विकास होता गया, तब तक, जब तक कि वे न केवल अपने ही अनुभव से ज़्यादा तेज़ी से सीखने की क्षमता अर्जित कर लें, बल्कि दूसरों को देख उनके अनुभव से सीखने की क्षमता भी वे अर्जित कर सकें; यही नहीं, वे दूसरों को भी दिखा सकें जो कुछ उन्होंने किसी और को करते देखा हो। इस तरह से सभी द्वारा सब कुछ सीख सकने की संभावना भी जन्मी। लेकिन एक से दूसरे तक यह ज्ञान पहुंचने का तरीका सक्षम न था। मौत का क्या कीजिए? क्या कीजिएगा, जब उस्ताद ही कूच कर जाएं, बगैर अपना इल्म अपने शागिर्दों तक पहुंचाए।

सवाल यह है कि क्या किसी और के द्वारा संयोग से सीखी गई चीज़ को, भुला दिए जाने की दर से भी ज़्यादा तेज़ी से सीखा जा सकता है? उस सीख को भूल जाने का कारण कुछ भी हो सकता है – कमज़ोर याद्दाश्त, खोजने वाले की मृत्यु.....।

समय के साथ एक ऐसा समय आया, शायद, जब कुछ प्रजातियों में सीखने की दर इतनी तेज़तर हुई कि एकदम नई सूरत ही निकल आई। एक प्राणी कुछ सीखकर उसे अगले तक पहुंचा देता, वो उससे आगे वाले को, ... यह सब इतनी तेज़ी से हो पा रहा था कि ज्ञान विसर जाने से पहले फैल पा रहा था। .... और ज्ञान की यह 'रिले रेस' इतनी तेज़ हो चली कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी ज्ञान का संचय हाता गया।

इसे समय-बन्ध (टाइम बांइडिंग) का नाम दिया गया है। मैं नहीं जानता यह नाम किसने दिया। बहरहाल, हमारे आस-पास ऐसे जीव मौजूद हैं जो एक अनुभव को दूसरे से जोड़कर, एक-दूसरे से सीखने की कोशिश में लगे हुए हैं।

प्रजाति की सामूहिक स्मृति के माध्मय से संचित ज्ञान का पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरण, इस दुनिया में एक नई बात थी। लेकिन इस प्रक्रिया में एक खामी थी, एक रोग जैसा था – गलत विचार भी आगे बढ़ जाते थे। ऐसे विचार भी फैल जाते थे जो हो सकता है उस प्रजाति के लिए फायदेमंद ही न हों। ऐसे में, प्रजाति के पास विचारों का संचय तो

होगा, पर ज़रूरी नहीं सब उपयोगी या फायदेमंद हों।

तो एक ऐसा समय आया जब सभी जमा विचार (फिर चाहे वे धीरे-धीरे ही क्यों न इकट्ठे हुए हों) केवल व्यावहारिक व उपयोगी ही न थे, बल्कि यह जमावड़ा तमाम किस्म के पूर्वाग्रहों और विचित्र तथा अजीब विश्वासों से भी भरा हुआ था।

ऐसे में इस खामी से बचने का एक उपाय सूझा। और वह था संदेह का समाधान। हर उस बात पर संदेह करना जो बात अतीत से बह कर हम तक पहुंची है – एक अनुभूत 'सत्य' का जामा पहने, और फिर ठेठ शुरुआत से अपने ही अनुभव के बूते उस 'सत्य' को परखना। बजाए इसके कि पहले के अनुभव पर ज्यों-का-त्यों विश्वास कर लिया जाए। और यही विज्ञान है। इस बात की खोज कि भूतकाल के औरों के सब अनुभवों पर विश्वास करने के बजाय, खुद परख कर अनुभव हासिल करना बेहतर होता है। मैं तो इसे इसी रूप में देखता हूं। मेरी नज़र में यही सर्वश्रेष्ठ परिभाषा है।

●●●

आपकी हौंसला-अफज़ाई के लिए मैं आपको वो सारी बातें याद कराना चाहूंगा जिन्हें आप अच्छे से जानते हैं। धार्मिक मामलों में भी तो नैतिक पाठ, एक बार नहीं, बार-बार पढ़ाए जाते हैं ताकि आप बार-बार उत्प्रेरित हों। मेरे ख्याल से यह बार-बार प्रेरित करना ज़रूरी भी है। साथ ही ज़रूरी है बच्चों, बड़ों, सभी के लिए, विज्ञान का मूल्य समझना। सिर्फ इसलिए नहीं कि हम बेहतर नागरिक बनें, या प्रकृति पर हमारा नियंत्रण बेहतर हो। नहीं, कुछ और बातें भी हैं।

विज्ञान द्वारा जनित विश्वदृष्टि का अपना एक मूल्य बोध है। नए-नए अनुभवों से हासिल दृष्टि से खोजी गई दुनिया का अपना एक सौंदर्य है, विस्मय है। विस्मय उस बात का जो मैंने आपको अभी बताई कि पदार्थ गतिमान है क्योंकि सूरज चमक रहा है। यह एक गहरा विचार है – अद्भुत, अचरज से भरा विचार। (हालांकि यह भी सही है कि सारी चीज़ों की गति का कारण सूरज का चमकना नहीं है। पृथ्वी की परिक्रमा सूरज के चमकने से स्वतंत्र है। और जो नाभिकीय क्रियाएं पृथ्वी पर ऊर्जा का नवीन स्रोत बनकर उभरी हैं। शायद ज्वालामुखियों के फटने

का स्रोत भी सूरज के चमकने से इतर है।)

विज्ञान पढ़ने के बाद दुनिया कितनी बदली-बदली सी नज़र आती है। मसलन पेड़ मुख्यतः हवा से बनते हैं। जलने के बाद वे फिर हवा में जा मिलते हैं। और जलने पर छूटी ऊष्मा में सूरज की वही ऊष्मा है जो हवा को पेड़ में बदलने में इस्तेमाल हुई थी। राख के रूप में बचे अवशेष में पेड़ का वह हिस्सा है, जो हवा से न होकर ठोस पृथ्वी (मिट्टी) से आया था।

इन्हीं खूबसूरत चीज़ों से विज्ञान अपने अचरजी अंदाज़ में भरा पड़ा है। ये स्वयं भी प्रेरणादायक हैं और इनका इस्तेमाल दूसरों को प्रेरित करने में भी किया जा सकता है।

विज्ञान की एक और विशेषता यह है कि यह तार्किक सोच का मूल्य समझाता है। साथ ही यह, विचार की स्वतंत्रता के महत्व से भी अवगत कराता है। हर पढ़ाई जाने वाली बात पर यकीन न कर उसे अनास्था के दायरे में ले आने के बहुत से सकारात्मक परिणाम मिले हैं। यहां, खास तौर पर शिक्षण में, आपको भेद करना होगा, विज्ञान और विज्ञान के उन तमाम तरीकों या प्रक्रियाओं में; वे तरीके व प्रक्रियाएं जो विज्ञान को विकसित करने में इस्तेमाल होते हैं। यह कहना आसान है, "हम लिखते हैं, प्रयोग करते हैं और अवलोकन करते हैं, और यह कहते हैं, वह करते हैं।" आप तरीकों की हूबहू नकल कर सकते हैं। अच्छे-खासे धर्म इसीलिए हवा हो जाते हैं, चूंकि उन्होंने जो लकीर सुझाई हम बस वही पीटते रह गए। इसी प्रकार यह भी संभव है, विज्ञान के नाम में तरीकों, रीतियों को अपनाए चले जाना, लेकिन वह छद्मविज्ञान ही होगा।

शिक्षण के क्षेत्र में ऐसे कई अध्ययन हैं – मसलन जहां लोग अवलोकन करते हैं, फिर सूची बनाते हैं, सांख्यिकीय कर्म करते हैं; लेकिन वो सब स्थापित विज्ञान, स्थापित ज्ञान नहीं बन जाता। वो तो विज्ञान की नकल भर है। वैसे ही जैसे दक्षिण समुद्री टापुओं के वासी लकड़ी की हवाई पट्टी और रेडियो टॉवर बना बैठे, इस उम्मीद में कि वहां एक बड़ा जहाज़ उतरेगा। यहां तक कि वे लकड़ी के हवाई जहाज़ भी बनाते हैं, ठीक वैसे ही हवाई जहाज़ जैसे वे अपने आस-पास फैले विदेशियों की हवाई पट्टियों पर आते-जाते देखते हैं। लेकिन अचरज कि वे उड़ते ही नहीं। इस छद्म वैज्ञानिक नकल का नतीजा है विशेषज्ञों की एक बड़ी

भारी जमात खड़ी कर देना। लेकिन धरातल पर बच्चों को पढ़ाने वाले शिक्षकों, आप तो कभी कभार विशेषज्ञों पर संदेह ज़ाहिर कर ही सकते हैं। विज्ञान से सीखें कि आपको विशेषज्ञों पर शक करना ही है। वस्तुत: विज्ञान को मैं एक और तरह से भी परिभाषित कर सकता हूं – विशेषज्ञों की अज्ञानता पर विश्वास करना, यानी कि विशेषज्ञों पर संदेह करना ही विज्ञान है।

यह कहना क़ि विज्ञान यह सिखाता है वह सिखाता है – शब्दाडम्बर होगा। विज्ञान नहीं सिखाता, अनुभव सिखाता है। अगर वे कहें कि विज्ञान हमें यह-वह दिखाता है तो आप पूछिए, "विज्ञान ऐसा कैसे कर पाता है? वैज्ञानिकों ने यह सब कैसे पता किया? कैसे, क्या, कहां?"

विज्ञान ने नहीं बल्कि, इस प्रयोग, इस प्रभाव ने दर्शाया है। आपको भी अन्य तमाम लोगों जैसे ही यह अधिकार प्राप्त है कि प्रयोगों के बारे में सुनने के बाद (लेकिन हमें सारे साक्ष्य सुनने चाहिए) निर्णय ले सकें कि इस सब में, फिर से इस्तेमाल किए जा सकने वाले किसी निष्कर्ष तक पहुंचा गया है या नहीं!

ऐसे मसले में, जो इतना पेचीदा है कि सही विज्ञान क्या बला है कहा नहीं जा सकता, हमें पुराने ज़माने की सूझ-बूझ पर विश्वास करना होगा। मैं यहां ठेठ धरातल पर काम कर रहे शिक्षक को उम्मीद दिलाना चाहता हूं कि वे सहज बुद्धि पर अपना भरोसा रखें। आपके अगुआ विशेषज्ञ गलत हो सकते हैं।

मैंने शायद इस व्यवस्था को बर्बाद किया है और 'केलटेक' में आने वाले छात्र अब शायद इतने अच्छे न रहें। हम एक ऐसे अवैज्ञानिक युग में जी रहे हैं, जहां संचार और टी.वी. पर परोसी जाने वाली तमाम बातें, किताबें, सभी अवैज्ञानिक हैं। वे बुरी नहीं हैं, वे बस अवैज्ञानिक हैं। विज्ञान के नाम पर इतनी बौद्धिक हेकड़ी व्यापी है चहुं ओर कि पूछो मत।

अंत में बस यही कि इन्सान का जीवन फकत कब्र तक का ही है। इसीलिए हरेक पीढ़ी को अनुभव से मिली सौगात को अगली पीढ़ी को सुपुर्द करते रहना चाहिए। इस सुपुर्दगी में आस्था व अनास्था का एक उत्कृष्ट समन्वय होना चाहिए ताकि एक प्रजाति अपने भ्रम इतनी कठोरता से युवा पीढ़ी पर न बरपा दे। वह अपने द्वारा कमाए ज्ञान को

तो आगे बढ़ाए अवश्य पर यह विवेक भी उन तक ज़रूर पहुंचाए कि संभवतः यह ज्ञान न भी हो।

अतीत का स्वीकार व अस्वीकार, दोनों ही सिखलाना ज़रूरी है, और वह भी ऐसी संतुलित दृष्टि से जिसमें एक खास तरह का कौशल दरकार हो। तमाम विषयों में विज्ञान ही वह विषय है जो हमें अपने पहले की पीढ़ियों के महान शिक्षकों की अचूक दृष्टि पर हमारी असंशयी आस्था में निहित खतरे का पाठ खूब पढ़ाता है। सो जारी रखें, शुक्रिया।

रिचर्ड फाइनमेन: (1918-1988) प्रख्यात भौतिकशास्त्री। यह लेख उनके द्वारा सन 1966 में नेशनल सायन्स टीचर्स असोसिएशन में दिए गए व्याख्यान का संपादित रूप है।
अंग्रेज़ी से अनुवाद: मनोहर नोतानी। शौकिया अनुवादक। विमर्श संस्था से संबद्ध। भोपाल में रहते हैं।